International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 226-225

मोहन राकेश के नाटकों का आर्थिक पक्ष : आधे–अधूरे

अजमेर

गांव व डॉ. बुटाना कुण्डू तह. गोहाना, सोनीपत, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

अर्थ का व्यक्ति और समाज के जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक परिस्थितियों मनुष्यों और समाज के मन तथा मनोविज्ञान असाधारण और कभी–कभी स्थायी रूप से प्रभावित करती है। भारतीय संस्कृति ने भी अर्थ के महत्त्व को स्वीकार किया है तथा मनुष्य के चार पुरुषार्थों में इसे प्रमुख स्थान दिया है। लोक तो धर्म को भी इसके बाद स्थान देने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करता हुआ कहता है, ''भूखे भोजन न होय गोपाल, ले लो कण्ठी माला।''[1]

अर्थ शब्द संस्कृति का संज्ञान शब्द है। अर्थ से अभिप्राय धन से है। ''अर्थ को जीवन का महत्त्वपूर्ण विधायक तत्त्व स्वीकार किया गया है। अर्थ ही समाज की शिराओं में बहता वह रक्त है, जो सम्पूर्ण समाज का जीवन संचालित करता है।''[2] हिन्दी शब्द सागर में अर्थ से तात्पर्य है– चतुवर्ग में ये एक धन, सम्पत्ति। अर्थशास्त्र के अनुसार मित्र पशु, भूमि, धन–धान्य की प्राप्ति और वृद्धि।''[3] मानक हिन्दी कोश में इसका तात्पर्य धन सम्पत्ति से लिया गया है। मनुष्य की आर्थिक स्थिति से सीधा सम्बन्ध होता है। जिसमें मनुष्य की वह आर्थिक स्थिति होती है, जिसमें वह अपने भौतिक सुख सुविधाओं को जुटाने का प्रयत्न करता है– जिसमें रहन–सहन, खान–पान मनोरंजन इत्यादि बातें शामिल हैं। 'अर्थ' को जीवन का महत्त्वपूर्ण विधायक तत्त्व स्वीकार किया गया है। अर्थ का परिगणन मानव के चार पुरुषार्थ में किया गया है। जिन वस्तुओं के उत्पादन, उपभोग, विनिमय और वितरण से सम्बन्धित मानवीय क्रियाओं को हम आर्थिक क्रियाएँ कहते हैं। शोध क्षेत्र में अर्थ का वाच्यार्थ धन सम्पत्ति ग्रहित है। धन सम्पत्ति के विभिन्न पर्याय है जैसे–धन, दौलत, रुपया आदि। वैज्ञानिक परिभाषा कोश में अर्थ की परिभाषा इस प्रकार है– ''अर्थशास्त्र के अंतर्गत धन ऐसी वस्तु है जो उपयोगी हो, जिसका भविष्य के लिए संग्रह करके रखा जा सकता है तथा जिसे खरीदा या बेचा जा सकता है।''[4] हिन्दी साहित्य में अर्थ का प्रयोग तीन अर्थों में मिलता है– शब्द के अर्थ के रूप में, अर्थ विज्ञान के रूप में। गौण अर्थ में यह शब्द अभिप्राय प्रयोजन आदि के रूप में मिलता है। मनुष्यों की जीविका को चलाने में जिसकी सहायता ली जाती है, वही अर्थ होता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में धर्म और काम का मूल आधार अर्थ ही बताया है।''[5] आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति ही समाज में श्रेष्ठ स्थान पाने का अधिकारी है। अतः मानव की सम्पूर्ण आकांक्षाएँ, उसकी मान्यताएँ एवं आदर्श बिखर जाते हैं अर्थ के अभाव में। वर्तमान समय में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रूप धारण कर चुका है। एक और गगनचुम्बी भव्य भवनों में स्वर्ग की झांकियाँ प्रस्तुत है तो दूसरी और दरिद्रता से जर्जर सामान्य जन दयनीय अवस्था के चित्र बने हुए हैं। सामान्य जन को दो वक्त की रोटी के भी लाले पड़े हुए हैं। वह आर्थिक वैषम्य समाज की ऐसी खाई है जिसे पाटना कोई सरल कार्य नहीं है। ''मनुस्मृति में अर्थ सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण देते हुए 'मनु' ने कहा है कि जो व्यक्ति अर्थ और काम में पृथक् है, अर्थात् इनमें अनासक्त है उसी के लिए धर्म के मार्ग खुले हैं।''[6] भारतीय धर्मग्रन्थों में अर्थ की उपेक्षा की गई है। इनके पीछे कर्त्तव्य एवं मानवमूल्यों को विस्मृत कर अधिकार का अनुचित उपयोग करता है। अर्थ की तृष्णा में उसकी प्राप्ति के अनुचित साधनों को भी प्रयोग में लाता है। यह सत्य है कि मानव को अपने पारिवारिक एवम् सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। अर्थ का धर्मयुक्त प्रयोग ही महत्त्वपूर्ण है अर्थ की तृष्णा में उसकी प्राप्ति के अनुचित साधनों को भी प्रयोग में लाता है। अनुचित साधनों से प्राप्त धन सदैव दुख ही प्रदान करता है। ऐसा धन प्राप्त होने पर भी वह कभी भी सुख शांति की नींद नहीं सो सकता। अतः अर्थ को सदैव उचित साधनों से अर्जित करने का प्रयास करना चाहिए। मोहन राकेश के नाटकों की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक भी है, आम जन वर्ग की भी है। परन्तु अर्थ की महत्ता हर स्थिति में कायम रहती है। परिवेश कैसा भी हो अर्थ की महत्ता को कम नहीं कर पाता। राकेश ने अपने नाटकों में अर्थ की महत्ता का विवरण गहनता से प्रस्तुत किया है। इनके नाटकों में आर्थिक विपन्नता को प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से आम जनमानस के हृदय की पीड़ा का अनुमान लगाया जा सकता है। आर्थिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है– 'बेकारी–बेरोजगारी'। जिसके होने से मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व पर इसके होने या न होने पर गहरा प्रभाव पड़ता है। राकेश ने अपने नाटकों के माध्यम से इस महत्त्वपूर्ण तथ्य पर प्रकाश डाला है। जिसका सर्वोत्तम उदाहरण है–मोहन राकेश कृत नाटक 'आधे–अधूरे'। जहाँ पर इन दोनों तथ्यों के प्रभाव को दिखाया गया है। इस नाटक की नायिका 'सावित्री' जहाँ नारी होते हुए भी आर्थिक रूप से सम्पन्न है। घर की आर्थिक स्थिति उसी के कन्धों पर टिकी है जिस कारण उसमें अहम भाव घर कर जाता है। यहाँ रोजगार के होने से उत्पन्न परेशानियों को देखा जा सकता है। आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति मानवीय भावनाओं के स्पर्श को समझ नहीं पाता। आर्थिक रूप से सम्पन्न व विपन्न दोनों परिस्थितियाँ ही मनुष्य के लिए उपयुक्त नहीं होती। गोविन्द चातक ने इस नाटक के सम्बन्ध में लिखा है। ''यह नाटक अर्थ की कई छायाएँ उजागर करता है। नारी की मुक्ति भावना, विघटनशील जीवन मूल्य, वैवाहित सम्बन्धों की विडम्बना और पुरुष का अधूरापन।''[7]

यह टिप्पणी नाटक में पूरे अर्थ की पोल खोलकर रख देती है। नाटक में चित्रित गृहस्वामिनी 'सावित्री' नौकरी से अर्जित धन पर गुजारा करती है। गृहस्वामी यानि सावित्री के पति कभी एक फैक्टरी के मालिक थे। लेकिन अभी बेरोजगारी व बेकारी की समस्या से ग्रस्त है तथा अपनी पत्नी के रोजगार पर आश्रित है तथा स्वयं ही आंतरिक संघर्ष में रहता है। सावित्री का पुत्र अशोक भी रोजगार की तलाश में दर–दर भटकता है। पति–पत्नी के रूप में भी वे दोनों लम्बे समय तक तनावग्रस्त जीवन व्यतीत करते हैं। कारण सिर्फ आर्थिक समस्या का एक प्रमुख रूप बेकारी और रोजगार है। इसी तनाव में सावित्री पूरे पुरुष की तलाश में भटक जाती है और नये –नये पुरुषों के सम्पर्क में आती है। वह हर दूसरे चौथे साल क्रमशः शिवजीत, जगमोहन, सिंघानिया, मनोज इत्यादि। जगमोहन के सहारे वह अपने परिवार व पति को छोड़ देने तक का प्रयास करती है। परन्तु सफल नहीं हो पाती। इस नाटक की मूल चेतना सावित्री है

जो आर्थिक रूप से सम्पन्न है। उसकी नजर में नौकरीपेशा व्यक्ति ही पूर्णतः सम्पन्न व सम्पूर्ण है। अपने पति की बेरोजगारी की वजह से वह उसे मूर्ख, निकम्मा, चिपचिपा और लिजलिजा मानती है। वह कहती है कि उसकी बेकारी की वजह से उसकी हड्डियों में जंग लग गया है। सावित्री का विश्वास है कि उसकी नौकरी व बुद्धि की वजह से घर टिका हुआ है। अर्थ की महत्ता को इस नाटक में सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। उसका पुत्र अशोक भी नयी पीढ़ी का प्रतिनिधि है। वह आधुनिक युवा वर्ग की सभी संवेदनाओं का प्रतीक है।

उसमें अपनी बेकारी की वजह से निराशा विद्रोह व असंतुष्टि की भावना भर जाती है। सावित्री घर के सामान को ठीक करते हुए कहती है– ''आज सिंघानिया आने वाला है। घर से बाहन नहीं जाना, तुम्हारे लिए नौकरी की बात कर रही हूँ। महेन्द्रनाथ कहता है वह घर में एक रबर स्टैम्प ही नहीं, मात्र एक रबर का टुकड़ा है जिसे परिवार के सभी सदस्यों की जिंदगी बर्बाद करने का जिम्मेदार माना जाता है। फिर भी वह इस घर से चिपका हुआ है, क्योंकि अन्दर से आरामतलब और घरघुसरा है। वह कहता है कि ''मैं एक कीड़ा हूँ, जिसने अंदर ही अंदर इस घर को खा लिया है।''[8]

अशोक बाहर जाने को तैयार, सावित्री उसे रोकती है, क्योंकि सिंघानिया आने वाला है ताकि वह अशोक की नौकरी की बात कर सके। किन्तु अशोक की दृष्टि में सिंघानिया– ''चुकंदर है, वह आदमी है? जिसे बैठने का शऊर है न बात करने का।''[9] अशोक ऐसे व्यक्ति से नौकरी नहीं पाना चाहता। सावित्री इससे हताश होकर कहती है– ''यहाँ पर सब लोग समझते क्या हैं मुझे? एक मशीन जो सबके लिए आटा पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है।''[10] सावित्री के इस कथन से अर्थ के रूप में बेकारी और रोजगार के महत्त्व को आंका जा सकता है। अर्थ एक ऐसा मूल तत्त्व है जिससे किसी भी परिवार में सुख शांति व सौहार्द के भाव को या दुःख क्लेश के भाव को देखा जा सकता है। जिसका प्रयोग बड़ी सजीवता के साथ मोहन राकेश ने अपने नाटकों में तथा विशेष रूप से आधे–अधूरे में किया गया है।

संदर्भ

1. भोलानाथ तिवारी, आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक, पृ. 201
2. डॉ. महेन्द्र कुमार, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. 204
3. श्याम सुन्दर दास, हिन्दी शब्द सागर, पृ. 163
4. बी.एल. गुप्ता, प्रारम्भिक अर्थशास्त्र, पृ. 1
5. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, पृ. 1
6. मुंशीलाल शर्मा, वैदिक संस्कृति की सभ्यता, पृ. 185
7. गोविन्द चातक, आधुनिक हिन्दी नाटक का अग्रदूत, मोहन राकेश, पृ. 89
8. मोहन राकेश, आधे अधूरे, पृ. 75
9. वही, पृ. 76
10. वही, पृ. 77